Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

भवभूति के रूपकों में पूजाविधान

अनुपम सिंह
ग्राम-माझा सोनौरा, पोस्ट-चौरे बाजार,
तहसील-बीकापुर, जिला-अयोध्या,
उत्तर प्रदेश, भारत।

Article Info
Volume 3 Issue 3
Page Number : 127-132

Publication Issue :
May-June-2020

Article History
Accepted : 20 June 2020
Published : 30 June 2020

सारांश – भौतिकतावादी मनुष्य ने पूजा–धूम के स्थान जहरीले एवं दमघोटू गैस को वायुमण्डल में उत्सर्जित कर सम्पूर्ण मानवीय सभ्यता और वातावरण को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। प्राकृतिक असंतुलन के कारण आज हम ओजोन पर्त में छिद्र, ग्लोबल वार्मिंग, अतिवृष्टि और अनावृष्टि जैसी भयावह समस्याओं से जूझ रहे हैं। यदि इन समस्याओं से बाहर निकलना है तो मनुष्य को पूजा विज्ञान को समझते हुए यह जानना होगा कि प्रकृति के दोहन और शोषण में बड़ा अन्तर है।

मुख्य शब्द – भवभूति, रूपक, पूजा, वायुमण्डल, विनाश, विज्ञान, संस्कृति, संस्कृत, काल।

भारतीय संस्कृति सनातन काल से ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तुनिरामया'' के सिद्धान्त को आत्मसात करती चली आ रही है। पूजा विज्ञान का आधार भी यही भावना है। ऐहिक और पारलौकिक सुख एवं विश्वकल्याण की भावना ही पूजा विज्ञान की मूल आत्मा है। पूजा की यह परम्परा भारतीय संस्कृति का अनुपम वैशिष्ट्य है जैसा कि कहा हैः **''अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम।''**[1] किसी भी कामना को पूर्ण करने के लिए पूजा से उत्तम कोई अन्य साधन हो ही नहीं सकता। कहा भी गया है **''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म''**। हमारे धर्मग्रन्थों में पूजा एवं महापूजा के विभिन्न प्रकारों का वर्णन है जैसे **''पंचैव महयज्ञाः''। तान्येव महासत्राणि भूलयज्ञो मनुष्यज्ञः पितृयज्ञो ब्रह्मपूजाइति।''**[2] ये महापूजा वस्तुतः महासत्र है। ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतपूजातथा नृपूजाये पाँच महापूजाहै। इन महायज्ञों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनकी सम्पन्नता के लिए व्यक्ति अपने विधाता, ऋषियों, पितरो, जीवों, एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रति अपने दायित्व को पूर्ण कर सकता है।

देवता को उद्देश्य करके मंत्रों के द्वारा अग्नि में हविर्द्रव्य का प्रक्षेपण पूजा है। यही कारण है कि अग्नि को श्रुतियों में पूजा का मुख कहा गया है **''अग्निर्वै यज्ञः''**[4], **''अग्निर्वै योनिर्यज्ञस्य''**[5], **''अग्नि वै यज्ञमुखम''**[6]

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

आदि। प्रत्येक गृहस्थ के घर में पाँच ऐसे स्थल होते है जहाँ प्रतिदिन जीव हिंसा की संभावना बनी रहती है जैसा कि कहा गया है–

पंøासूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।

कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाह्यन्।।[7]

इन स्थलों पर होने वाले प्रतिदिन के हिंसा के पाप से मुक्ति के लिए ऋषियों ने पाँच महायज्ञों की व्यवस्था की। वेद अध्ययन व अध्यापन ब्रह्मपूजा है, तर्पण पितृपूजा है, हवनादि से सत्कार करना नृप पूजा है–

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम् पøौतान यो महायज्ञान् न हापयति शक्तितः। स गृहेऽपि वसन् सूनादोषैर्नलिप्यते।[8]

भवभूति कालीन समाज एक ऐसा समाज था जहाँ धर्म सबमें प्राण रूप में बसता था। सर्वत्र वैदिक संस्कृति अपने चरम पर थी, सबका वेदों के प्रति सम्मान था, वेद–वाक्य लोगों के लिए भगवत आदेश की तरह थे जिन्हें पूर्ण करना समाज अपना परम धर्म समझता था। वस्तुतः वेदों को ही सर्व धर्म का मूल स्वीकार किया गया– **''वेदोऽखिलो धर्म मूलम्''**। भवभूति के साहित्य हमें यत्र–तत्र वेदों और मन्त्रों के प्रति उनकी सहज श्रद्धा देखने को मिलती है। वैदिक काल की ही तरह भवभूति के समय में भी वेद निर्दिष्ट यज्ञानुष्ठान लोग पूर्ण श्रद्धा के साथ करते थे। प्रमुख रूप से निम्नलिखित वैदिक अनुष्ठान किये जाते थें–

1. ब्रह्मयज्ञ– जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि लोगों में वेदों के प्रति पूर्ण निष्ठा थी जो उनके वेदों के अध्ययन एवं अध्यापन में परिलक्षित एवं व्यक्त होती थी। प्रतिदिन होने वाले वेदाध्ययन को ही ब्रह्म पूजा कहते थे। वेदों के साथ–साथ अन्य धर्म ग्रन्थों का भी अध्ययन होता था। लोगों का ऐसा विश्वास था कि इनके अध्ययन से ईश्वर व देवता प्रसन्न होकर लोगों के कष्ट व पाप दूर करते थे। ऐसे धर्म व कर्म में संलग्न व्यक्ति ही इस सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करता है–

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दैवे चैवेह कर्मणि।

दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम्।।[9]

इस पूजा का उल्लेख भवभूति ने उत्तररामचरितम् के प्रारम्भ में कि पूजा है जब वह कहते हैं– **''यं ब्रह्मर्णमयं देवी वाग्वश्येवानुववर्तते''**[10] जृम्भकारत्त जो वेद धर्म के हित के लिए वर्णित है उसकी प्राप्ति के लिए हजारों वर्षों तक तपस्या की जाती थी।[11] ये तप ही ब्रह्म पूजा था। तत्कालीन समाज में क्षत्रिय भी वेदों की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहते थे। लव वं चन्द्रकेतु के युद्ध के प्रसंग में राम ने लव को क्षात्रधर्म के बारे में बताया है।[12] जहाँ तक स्त्रियों का सवाल था वे भी यज्ञों में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी।[13] इसका

प्रमाण है कि आत्रेयी निगमान्तक विद्या सीखने के लिएर अगस्त्य ऋषि के आश्रम को जाना चाहती है जो उसके और वासन्ती के वार्तालाप के क्रम में हमें ज्ञात होता है–

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।

तेभ्योऽधिगन्तुं विगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि।।[14]

वस्तुतः वह समय सारस्वत साधन के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा का समय था जो स्त्री व पुरुष सभी में देखने को मिलता है। लव व कुश के निगमान्तक विद्या में कुशलता का भी वर्णन मिलता है।[15]

2. पितृयज्ञ–इस पूजा के द्वारा ऋषियों ने यह व्यवस्था दी कि मनुष्य पितरों के प्रति अपना सम्मान व्यक्त कर सके क्योंकि बिना उनके आशीर्वाद के जीवन सफल नहीं हो सकता था। तर्पण में सोना, चाँदी, तांबा, कांसा के पात्र के प्रयोग का विधान है जबकि मिट्टी व लोहे का पात्र–प्रयोग निषिद्ध था। तपर्ण के उपरान्त ब्राह्मण को भोजन कराने का विधान था।[16] वस्तुतः यह पूजा पितरों के प्रति अपना सम्मान व्यक्त करने के लिए था। उत्तररामचरितम् में हमें इसका प्रसंग देखने को तब मिलता है जब लव–कुश के 12 वें जन्म वर्ष के उपलक्ष्य में भागीरथी सीता से अपने हाथों के द्वारा सूर्य देवता को तर्पण अर्पित करने को कहती है।17

3. देवयज्ञ– देवपूजा देवताओं को प्रसन्न करने के लिए होता था। इस पूजा के द्वारा मनुष्य देवताओं के प्रति अपना सम्मान व्यक्त करता था। इस पूजा को करने के लिए अग्नि में मन्त्रों के द्वारा समिधा डाला जाता था। आपस्तम्बधर्म सूत्र, बौधायनधर्मसूत्र के अनुसार देवता विशेष के नामोच्चारण के साथ अग्नि में हवि डालना देवपूजा के रूप में जाना जाता है।[18] हवि डालते समय 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण आवश्यक था। महावीर चरित के मंगलाचरण में ब्रह्म की, मालतीमाधव[19] में शिव की व उत्तररामचरितम्[20] में सरस्वती की स्तुति की गयी है। भागीरथी[21] तथा वनदेवता आदि की पूजा–अर्चना भी उस समय के लोगों का देवताओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त करती है। भवभूति कालीन समाज में मूर्तिपूजा को भी पूर्ण मान्यता प्राप्त थी जो हमें कवि के द्वारा शंकर कामदेव एवं चामुण्डा के मन्दिरों के वर्णन में देखने को मिलता है।

(4) भूतयज्ञ– इस पूजा को बलिवैश्वदेव भी कहते हैं। वैश्वदेव का तात्पर्य देवताओं को सुन्दर–सुन्दर पक्वान अर्पण करने से है। इस पूजा में सभी गृहस्थ अपने सामर्थ्यानुसार देवताओं, पितरों, मनुष्यों यहाँ तक कि कीडे–मकोड़ों, जन्तुओं आदि को भी भोजन के द्वारा तृप्त करना चाहता है। बलि के द्वारा देवी और देवता को प्रसन्न करना धार्मिक अनुष्ठान का मुख्य भाग था। जीवों के अतिरिक्त मनुष्य–बलि भी प्रचलित थी। इस तरह बलि देना समाज में प्रचलित था जिसका प्रसंग राम के उस कथन से मिलता है, जब वे सीता को लक्ष्य करके कहते है– **''क्रव्याद्भ्यो बलिमिव दारूणः क्षिपामि।'**[23]

5. नृयज्ञ–भारतीय संस्कृति में सदा से ही 'अतिथि देवो भव' अर्थात् अतिथि में देवता के दर्शन की परम्परा रही है। अतिथि सत्कार को भी इस देव संस्कृति में पूजा का दर्जा प्राप्त है। अतिथि वह है जो किसी घर में कुछ समय के लिए अर्थात् दिन पूजा रात से लेकर कुछ दिन तक निवास करता है–

"अनित्यास्य स्थितिर्यस्मात्तस्माददतिथिरुच्यते।"[24]

भवभूति कालीन समाज में भी अतिथियों के सम्मान की परम्परा थी। अतिथियों का आगे बढ़कर स्वागत करना, जल से पैर धोना, आदर के साथ आसन देना, भोजन कराना तथा जाते समय कुछ दूर तक छोड़कर आना– ये सभी कर्म हमारी संस्कृति में आतिथ्य के अभिन्न अंग हैं। भवभूति के उत्तररामचरित में आतिथ्य पूजा की झलक हमें कई स्थानों पर देखने को मिलती है यथा– 'वनदेवता वासन्ती के द्वारा तापसी का सत्कार करना।[25] चित्रवीथी में राम लक्ष्मण को चित्र दिखाते हुए कहते हैं कि यमनियमादि का पालन करने वाले ये वैखानसाश्रित वे तपोवन है जिसमें अतिथि सत्कार में निपुण गृहस्थ निवास करते हैं।[26]

स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में लोगों का यज्ञों में बड़ा विश्वास था और वे लोग उनका आयोजन पूर्ण निष्ठा व कर्तव्यपरायण के साथ करते थे। उपर्युक्त यज्ञों के अतिरिक्त कुछ अन्य पूजा भी प्रचलित थे, जो निम्न है–

1. धनुष यज्ञ– भवभूति कालीन समाज में पाणि ग्रहण संस्कार में भी पूजा की परम्परा प्रचलित थी। राजा जनक ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए धनुष पूजा का आयोजन किया था जिसकी प्रेरणा स्वयं विश्वामित्र ने दी थी। इसीलिए उत्तररामचरित में विश्वामित्र को कन्यादाता और दशरथ को ग्रहीता के रूप में वर्णित किया है। इस वैवाहिक पूजा की पूर्णता गोदान के विधान के साथ सम्पन्न होती थी।[27]

2. अश्वमेध यज्ञ– राजा जब अपने क्षेत्र का विस्तार करना चाहता था तो वह इस पूजा का आयोजन करता था जिसमें राजा के द्वारा एक अश्व छोड़ दिया जाता था और जो भी राजा इस अश्व को पकड़ता था, उससे युद्ध किया जाता था। राजा सगर ने यह पूजा किया था। परशुराम ने भी अपने यश की वृद्धि के लिए इस पूजा के माध्यम से क्षत्रियों को कई बार परास्त किया था।

3. सोम यज्ञ– जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि इस पूजा में सोमलता के रस को आहुति के रूप में दिया जाता था। कई जगह ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि मतंग मुनि के आश्रम में इस पूजा का आयोजन खूब होता था। इस आश्रम के निकट पम्पासरोवर में सोमपात्र चमस आदि यत्र तत्र बिखरे हुए हैं जिनसे आज्य की गंध सवत्र प्रसारित हो रही है ऐसा शब्द चित्र महाकवि ने प्रस्तुत किया है।

4. वाजपेय यज्ञ– इस पूजा को आप्तोर्याम पूजा भी कहते हैं जो अहर्निश चलता था। इसका उद्देश्य यश की प्राप्ति था। यह विशेष रूप से प्रजापति देवता के लिए आयोजित होता था। पवित्र धूम से व्याप्त आकाश में

सूर्य भी स्पष्ट रूप से नहीं दिखता था। राम के वनगमनावसर पर आयोजित वाजपेय पूजा में प्राप्त छत्र से राम को धूप से बचाते हुए वर्णित किया गया है–

स्कन्धारोपितयज्ञपात्रनिचयाः स्वैर्वाजपेयार्जितै–

श्छात्रैर्वारयितुं तवार्ककिरणांस्ते ते महाब्राह्मणाः।

साकेताः सह मैथिलैरनुपतत्पत्नीगृहीताग्नयः

प्राक्प्रस्थापितहोमधेनव इये धावन्ति वृद्धा अपि।।[28]

तत्कालीन समाज का ऐसा दृढ़ मत था कि सृष्टि में सन्तुलन का एक मात्र उपाय पूजा साधना ही है। इसलिए उस समय लोग पूरी निष्ठा से पूजाादि कर्म करते थे। सभी धर्मग्रन्थों ने मानव योनि को कर्म प्रधान माना है। कर्म ही मनुष्य जीवन का सनातन पूजा है और मनुष्य को अपने हर श्वांस के साथ इस कर्मपूजा में पूर्णतः प्रवृत्त होना चाहिए। पूजा जहाँ एक ओर मनुष्य जीवन को उदात्तता प्रदान करते हैं वही वायुमण्डल की शुद्धता को भी अक्षुण्ण बनाये रखते हैं। परन्तु आज का भौतिकतावादी मनुष्य ने पूजा–धूम के स्थान जहरीले एवं दमघोटू गैस को वायुमण्डल में उत्सर्जित कर सम्पूर्ण मानवीय सभ्यता और वातावरण को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। प्राकृतिक असंतुलन के कारण आज हम ओजोन पर्त में छिद्र, ग्लोबल वार्मिंग, अतिवृष्टि और अनावृष्टि जैसी भयावह समस्याओं से जूझ रहे हैं। यदि इन समस्याओं से बाहर निकलना है तो मनुष्य को पूजा विज्ञान को समझते हुए यह जानना होगा कि प्रकृति के दोहन और शोषण में बड़ा अन्तर है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद–1/1.
2. शतपथ ब्राह्मण– 11/5/6/1.
3. यज्ञमीमांसा– पृ0 51.
4. शतपथ ब्राह्मण– 3/4/3/11.
5. शतपथ ब्राह्मण– 1/5/2/11.
6. तैत्तिरीय ब्राह्मण– 1/6/1/8.
7. मनुस्मृति– 3/75.
8. मनुस्मृति– 3/70–71.
9. मनुस्मृति– 3/75.
10. उत्तररामचरित् – 1/2.
11. वही, 1/15.
12. वही, 5/38.
13. वही, द्वितीय अंक।

14. उत्तररामचरित् 2/3.
15. वही, द्वितीय अंक।
16. मनुस्मृति– 3/36.
17. उत्तररामचरित्, पृ0–217.
18. महावीरचरित् 1/1.
19. मालती माधव– 1/1.
20. उत्तररामचरित् 1/1.
21. वही, पृ0 143.
22. मालतीमाधव– 5/21–22–25.
23. उत्तररामचरित्, 1/49.
24. मनुस्मृति– 3/102.
25. वही, 2/1.
26. उत्तररामचरित् 1/25.
27. महावीर चरित्, पृ0 54.
28. महावीरचरित्– 4/57.